International Journal of Web of Multidisciplinary Studies
(Peer-Reviewed, Open Access, Fully Refereed International Journal)
website: https://ijwos.com
Volume 3 Issue 2 , Feb 2026
OPEN ACCESS
E-ISSN : 3049-2424
DOI: https://doi.org/10.71366/ijwos03022684110

गुप्तोत्तर काल और हर्ष युग की संस्कृतिः निरंतरता एवं परिवर्तन

डॉ. अनुपम कुमारी [1]
[1] प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति और पुरातत्व टी.एम.बी.यू., भागलपुर

Article Info

Article History:

Published:28 Feb 2026

Publication Issue:
Volume 3, Issue 2
February-2026

Page Number:
499-505

Corresponding Author:
डॉ. अनुपम कुमारी

Abstract:

भारतीय इतिहास में गुप्त काल को प्रायः *"स्वर्ण युग"* की संज्ञा दी जाती है, क्योंकि इस काल में राजनीतिक स्थिरता, प्रशासनिक दक्षता तथा कला, साहित्य, विज्ञान और धर्म के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुईय किंतु गुप्त साम्राज्य के पतन के पश्चात आरंभ हुए गुप्तोत्तर काल को लंबे समय तक इतिहासलेखन में सांस्कृतिक अवनति और राजनीतिक अराजकता का युग मान लिया गया, जिससे यह धारणा बनी कि गुप्त काल के साथ ही भारतीय सभ्यता की रचनात्मक शक्ति क्षीण हो गई, जबकि आधुनिक ऐतिहासिक अनुसंधान, पुरातात्विक खोजें और समकालीन साहित्यिक स्रोत इस दृष्टिकोण का खंडन करते हैं और यह स्पष्ट करते हैं कि गुप्तोत्तर काल भारतीय संस्कृति के पतन का नहीं, बल्कि संक्रमण, पुनर्गठन और नवीन अभिव्यक्तियों का काल थाय इस युग में केंद्रीय सत्ता के कमजोर होने के बावजूद क्षेत्रीय शासकों, सामंतों तथा धार्मिक संस्थाओं के संरक्षण में सांस्कृतिक गतिविधियाँ निरंतर सक्रिय रहीं, जिसके परिणामस्वरूप मंदिर स्थापत्य, मूर्तिकला, चित्रकला, साहित्य और धार्मिक विचारधाराओं में नए रूपों और शैलियों का विकास हुआ, साथ ही ब्राह्मण धर्म के साथ–साथ बौद्ध और जैन परंपराओं की सृजनात्मक निरंतरता भी बनी रहीय इसी सांस्कृतिक प्रवाह की पराकाष्ठा सातवीं शताब्दी में हर्षवर्धन के शासनकाल में देखने को मिलती है, जब राजनीतिक एकीकरण के प्रयासों के साथ सांस्कृतिक जीवन को अभूतपूर्व प्रोत्साहन मिला, स्वयं हर्ष का साहित्यिक योगदान, धर्मों के प्रति सहिष्णु दृष्टिकोण, शिक्षा केंद्रों का उत्कर्ष तथा विदेशी यात्रियों के विवरण इस तथ्य को रेखांकित करते हैं कि गुप्तोत्तर काल और हर्ष युग भारतीय सांस्कृतिक इतिहास में अवनति के नहीं, बल्कि निरंतरता और परिवर्तन के सशक्त और गतिशील चरण हैं।

Keywords: गुप्त साम्राज्य, हर्षवर्धन, सामंतवाद भूमि अनुदान प्रथा, धार्मिक सहिष्णुता, संस्कृत साहित्य शिक्षा केंद्र

1. गुप्तोत्तर काल की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

गुप्त साम्राज्य के पतन के पश्चात् उत्तर भारत में राजनीतिक एकता का विघटन अवश्य हुआ, परंतु इससे भारतीय सांस्कृतिक जीवन में कोई मौलिक विच्छेद उत्पन्न नहीं हुआ। गुप्तोत्तर काल को लंबे समय तक सांस्कृतिक अवनति का युग माना गया, किंतु आधुनिक ऐतिहासिक दृष्टिकोण यह स्पष्ट करता है कि यह काल वस्तुतः सांस्कृतिक संक्रमण, पुनर्संरचना और निरंतरता का चरण था। केंद्रीय सत्ता के कमजोर पड़ने से छोटे–छोटे क्षेत्रीय राज्यों और स्थानीय शासकों का उदय हुआ, जिन्होंने राजनीतिक स्वार्थों के साथ–साथ सांस्कृतिक प्रतिष्ठा की प्राप्ति के लिए धर्म, कला और शिक्षा को संरक्षण प्रदान किया। परिणामस्वरूप, सांस्कृतिक गतिविधियाँ किसी एक केंद्र तक सीमित न रहकर विभिन्न क्षेत्रों में फैल गईं और उनमें क्षेत्रीय विशेषताओं का समावेश होने लगा। धार्मिक दृष्टि से यह काल अत्यंत बहुलतावादी और सहिष्णु रहा।[1] ब्राह्मण धर्म अपनी वैदिक और पौराणिक परंपराओं के साथ निरंतर विकसित होता रहा, जिसमें यज्ञ, दान, व्रत, तीर्थ और मंदिर–पूजा का विशेष महत्व था। इसी के साथ–साथ बौद्ध धर्म और जैन धर्म भी सामाजिक और बौद्धिक जीवन में प्रभावशाली बने रहे। बौद्ध विहारों और जैन मठों की स्थापना तथा उनके संरक्षण से न केवल धार्मिक गतिविधियाँ संचालित हुईं, बल्कि शिक्षा और ज्ञान के केंद्र भी विकसित हुए। विभिन्न धर्मों का यह सहअस्तित्व सांस्कृतिक समन्वय और धार्मिक सहिष्णुता का परिचायक था, जिसने समाज में स्थायित्व और संतुलन बनाए रखा।शिक्षा और बौद्धिक परंपरा गुप्तोत्तर काल की संस्कृति का एक महत्वपूर्ण आधार रही। मठों, विहारों और अन्य शिक्षण संस्थानों में वेद, उपनिषद, दर्शन, व्याकरण, तर्कशास्त्र, चिकित्सा और साहित्य जैसे विषयों का अध्ययन किया जाता था। विद्वानों और आचार्यों को राजकीय तथा धार्मिक संस्थाओं से संरक्षण प्राप्त था, जिससे ज्ञान की परंपरा निरंतर आगे बढ़ती रही। संस्कृत भाषा प्रशासन, धर्मशास्त्र और शास्त्रीय साहित्य की प्रमुख माध्यम बनी रही, जो गुप्तकालीन सांस्कृतिक विरासत की स्पष्ट निरंतरता को दर्शाती है। इसके साथ–साथ प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं का भी प्रयोग बढ़ने लगा, जिससे लोकसंस्कृति और शास्त्रीय संस्कृति के बीच संबंध और अधिक सुदृढ़ हुआ।[2]

Copyright © 2025 The Author(s) : This is an open access article under the CC BY license (http://creativecommons.org/licenses/by-nc/4.0/)

सामाजिक संरचना की दृष्टि से वर्ण व्यवस्था का ढाँचा मूल रूप से बना रहा, किंतु सामाजिक जीवन में क्षेत्रीय विविधता और स्थानीय परंपराओं का प्रभाव बढ़ने लगा। ग्राम और नगर स्तर पर विकसित होने वाली सांस्कृतिक विशेषताओं ने सामाजिक जीवन को अधिक जीवंत और बहुआयामी बनाया। दान–प्रथा, उत्सव, मेलों और धार्मिक अनुष्ठानों ने समाज में सामूहिकता और सांस्कृतिक चेतना को बनाए रखा। स्त्रियों, साधुओं, भिक्षुओं और विद्वानों की सामाजिक भूमिका भी इस काल में महत्वपूर्ण बनी रही। कला और स्थापत्य के क्षेत्र में भी गुप्तोत्तर काल पूर्णतः निष्क्रिय नहीं रहा। मंदिर निर्माण, मूर्तिकला और अलंकरण में गुप्तकालीन परंपराओं के साथ–साथ नवीन शैलियों का विकास हुआ, जिनमें भावात्मकता और क्षेत्रीय तत्वों का समावेश दिखाई देता है।[3] यह कला न केवल धार्मिक आस्था की अभिव्यक्ति थी, बल्कि शासकों की सांस्कृतिक अभिरुचि और सामाजिक संरचना का भी प्रतिबिंब प्रस्तुत करती थी। इस प्रकार गुप्तोत्तर काल को सांस्कृतिक पतन का युग मानना ऐतिहासिक दृष्टि से उचित नहीं है। वास्तव में यह काल भारतीय संस्कृति के विकास की एक महत्वपूर्ण कड़ी था, जिसने गुप्तकालीन विरासत को संरक्षित रखते हुए उसमें परिवर्तन, विविधता और नवाचार के तत्व जोड़े। यही सुदृढ़ सांस्कृतिक आधार आगे चलकर हर्षवर्धन के शासनकाल में सांस्कृतिक उत्कर्ष और समन्वय के रूप में प्रकट होता है, जिससे गुप्तोत्तर काल भारतीय सांस्कृतिक इतिहास में एक सेतु के रूप में स्थापित होता है।[4]

हर्ष युग की सांस्कृतिक विशेषताएँ

हर्षवर्धन का शासनकाल भारतीय इतिहास में सांस्कृतिक समन्वय, धार्मिक सहिष्णुता और बौद्धिक उदारता का अत्यंत महत्वपूर्ण प्रतीक माना जाता है। गुप्तोत्तर काल की राजनीतिक विघटनशीलता के पश्चात् हर्षवर्धन ने उत्तर भारत के एक बड़े भूभाग को संगठित कर न केवल राजनीतिक स्थिरता स्थापित की, बल्कि सांस्कृतिक जीवन को भी नवीन ऊर्जा प्रदान की। वे प्रारंभ में शैव परंपरा से संबद्ध थे, किंतु अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में बौद्ध धर्म, विशेषतः महायान संप्रदाय से गहराई से प्रभावित हुए। इसके बावजूद उन्होंने किसी एक धर्म को राज्य धर्म के रूप में आरोपित नहीं किया, बल्कि ब्राह्मण धर्म, बौद्ध धर्म और जैन धर्म तीनों के प्रति समान सम्मान और संरक्षण की नीति अपनाई। उनके शासनकाल में धार्मिक सभाएँ, शास्त्रार्थ, दान–प्रथा और तीर्थ यात्राएँ सांस्कृतिक जीवन का अभिन्न अंग बन गईं, जिससे समाज में धार्मिक सौहार्द और वैचारिक सह–अस्तित्व की भावना सुदृढ़ हुई।[5] हर्षवर्धन की धार्मिक नीति केवल सहिष्णुता तक सीमित नहीं थी, बल्कि वह सक्रिय सांस्कृतिक संरक्षण की नीति थी। उन्होंने बौद्ध संघों, विहारों और शिक्षा केंद्रों को उदार दान प्रदान किया तथा विद्वानों, भिक्षुओं और आचार्यों को राजकीय संरक्षण दिया। कन्नौज में आयोजित विशाल धार्मिक सभाएँ और सम्मेलन उनके शासन की सांस्कृतिक चेतना का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं, जहाँ विभिन्न धर्मों और दार्शनिक परंपराओं के विद्वान एकत्र होकर विचार–विमर्श करते थे।[6] इस प्रकार हर्ष युग में धर्म सामाजिक विभाजन का कारण न बनकर सांस्कृतिक एकता और बौद्धिक संवाद का माध्यम बन गया। हर्षवर्धन के दरबार में साहित्य, दर्शन और कला को असाधारण संरक्षण प्राप्त था, जिसके कारण उनका दरबार उस समय का एक प्रमुख सांस्कृतिक केंद्र बन गया। स्वयं हर्षवर्धन एक साहित्य–संवेदनशील शासक थे और उन्होंने संस्कृत भाषा में रत्नावली, प्रियदर्शिका और नागानंद जैसे नाटकों की रचना कर साहित्यिक परंपरा को समृद्ध किया। ये नाटक केवल काव्यात्मक सौंदर्य के लिए ही नहीं, बल्कि नैतिक मूल्यों, करुणा, त्याग और धार्मिक आदर्शों की अभिव्यक्ति के लिए भी महत्वपूर्ण हैं। हर्ष की रचनाएँ यह दर्शाती हैं कि शासक वर्ग भी सांस्कृतिक सृजन में सक्रिय भूमिका निभा रहा था।[7]

हर्ष के दरबार के सर्वाधिक प्रतिष्ठित साहित्यकार बाणभट्ट द्वारा रचित हर्षचरित तत्कालीन इतिहास का एक महत्वपूर्ण साहित्यिक स्रोत है, जिसमें हर्षवर्धन के जीवन, शासन व्यवस्था और राजनीतिक अभियानों के साथ–साथ सामाजिक संरचना, धार्मिक जीवन, शिक्षा प्रणाली, नगरों, ग्रामों और जनजीवन का अत्यंत सूक्ष्म और सजीव चित्रण मिलता है। इसी प्रकार बाणभट्ट की कादंबरी तत्कालीन समाज की सांस्कृतिक संवेदनाओं, प्रेम, शिक्षा, नैतिकता और जीवन मूल्यों की कलात्मक अभिव्यक्ति प्रस्तुत करती है। इन ग्रंथों के माध्यम से हर्ष युग का सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश हमारे सामने सजीव रूप में उभर आता है, जिससे यह काल भारतीय साहित्य और संस्कृति के इतिहास में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त करता है।[8] कला और बौद्धिक गतिविधियों को राजकीय संरक्षण मिलने के कारण हर्ष युग में सांस्कृतिक चेतना अत्यंत विकसित और संगठित रूप में दिखाई देती है। स्थापत्य, मूर्तिकला, नाट्यकला और संगीत जैसी विधाओं को धार्मिक और राजकीय दोनों स्तरों पर प्रोत्साहन मिला। विद्वानों और कलाकारों को सम्मानजनक स्थान प्राप्त था, जिससे रचनात्मकता और बौद्धिक स्वतंत्रता को बल मिला। इस प्रकार हर्षवर्धन का शासन गुप्तकालीन सांस्कृतिक परंपराओं की निरंतरता के साथ–साथ गुप्तोत्तर नवाचारों का भी समन्वय प्रस्तुत करता है। अतः यह कहा जा सकता है कि हर्षवर्धन का युग केवल राजनीतिक पुनरुत्थान का काल नहीं था, बल्कि वह भारतीय सांस्कृतिक इतिहास में समन्वय, सहिष्णुता और सृजनात्मक उत्कर्ष का स्वर्णिम अध्याय था। धार्मिक उदारता, साहित्यिक समृद्धि और बौद्धिक संवाद की यह परंपरा हर्ष युग को गुप्तोत्तर काल की सांस्कृतिक धारा की पराकाष्ठा के रूप में स्थापित करती है और यह सिद्ध करती है कि भारतीय संस्कृति ने परिवर्तनशील परिस्थितियों में भी अपनी जीवंतता और समन्वयकारी स्वरूप को बनाए रखा।[9]

संस्कृति में निरंतरता के तत्त्व

गुप्तोत्तर काल से हर्ष युग तक भारतीय संस्कृति में निरंतरता के स्पष्ट तत्त्व दिखाई देते हैं, जहाँ राजनीतिक अस्थिरता के बावजूद धार्मिक, बौद्धिक और सामाजिक जीवन सुचारु रूप से चलता रहा। ब्राह्मण धर्म, बौद्ध धर्म और जैन धर्म तीनों समानांतर रूप से सक्रिय रहे और मंदिरों, मठों तथा विहारों के माध्यम से समाज में नैतिकता, शिक्षा और आध्यात्मिक चेतना को बनाए रखा। नालंदा और अन्य शिक्षा केंद्रों में दर्शन, तर्कशास्त्र, चिकित्सा और साहित्य की शिक्षा निरंतर दी जाती रही, और संस्कृत भाषा साहित्यिक और प्रशासनिक जीवन की मुख्य भाषा बनी रही। हर्षवर्धन के शासन में धार्मिक सहिष्णुता, साहित्य और कला को संरक्षण मिला, जिससे गुप्तकालीन सांस्कृतिक परंपराएँ निरंतरता के साथ हर्ष युग तक प्रवाहित हुईं और भारतीय संस्कृति में विविधता के भीतर एकता और स्थायित्व कायम रहा।[10]

धार्मिक परंपराएँ

गुप्तोत्तर काल की सांस्कृतिक परंपराओं की निरंतरता हर्ष युग में विशेष रूप से दिखाई देती है, जिसमें धार्मिक बहुलता और सह–अस्तित्व भारतीय समाज की सबसे प्रमुख विशेषता बनी रही। इस काल में ब्राह्मण, बौद्ध और जैन तीनों धार्मिक परंपराएँ समानांतर रूप से विकसित होती रहीं और एक–दूसरे के अस्तित्व को स्वीकार करती रहीं, जिससे समाज में सांस्कृतिक समन्वय और सामाजिक संतुलन कायम रहा। ब्राह्मण धर्म ने वैदिक और पौराणिक परंपराओं के माध्यम से सामाजिक और धार्मिक जीवन में मार्गदर्शन जारी रखाय यज्ञ, दान, व्रत, पूजा, तीर्थ और मठ–स्थापनाएँ न केवल धार्मिक अनुष्ठानों का केंद्र थीं, बल्कि समाज में नैतिकता, सामूहिक चेतना और सामाजिक समरसता को बनाए रखने का प्रमुख माध्यम भी बनीं।[11] इस दौरान मंदिरों की स्थापत्य कला और मूर्तिकला में गुप्तकालीन शैलियों का सुसंगत विकास हुआ, जिससे धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन में सौंदर्य, भव्यता और अनुशासन का समन्वय दिखाई देता है। समानांतर रूप से बौद्ध धर्म, विशेष रूप से महायान संप्रदाय, हर्षवर्धन के शासनकाल में अत्यधिक संवर्धन और संरक्षण प्राप्त करता रहा। बौद्ध विहारों और संघों में अध्ययन, ध्यान, धर्मोपदेश और वैचारिक विमर्श की प्रक्रिया निरंतर चलती रही, और राज्य का संरक्षण इन संस्थाओं को शिक्षा, सामाजिक सेवा और धार्मिक आयोजन में सक्रिय बनाए रखने का माध्यम बना।[12] नालंदा, विक्रमशिला और अन्य बौद्ध शिक्षा केंद्र एशिया के प्रमुख अध्ययन और ज्ञान केंद्र बने, जहाँ दर्शन, तर्कशास्त्र, चिकित्सा, साहित्य और धर्मशास्त्र का गहन अध्ययन होता था। जैन धर्म ने भी अपने मठों, संघों और साधुओं के माध्यम से सामाजिक जीवन, नैतिक अनुशासन, व्यक्तिगत और सामूहिक आचार तथा धार्मिक शिक्षा में महत्वपूर्ण योगदान दिया, जिससे समाज के विभिन्न वर्गों में धार्मिक और नैतिक चेतना विकसित होती रही। मंदिरों, विहारों और मठों की निरंतर स्थापना, उनकी कलात्मक सज्जा और सामाजिक गतिविधियों में सक्रिय भागीदारी यह स्पष्ट प्रमाण है कि गुप्तकालीन धार्मिक परंपराएँ हर्ष युग तक निरंतर प्रवाहित हुईं और समाज की सांस्कृतिक संरचना का आधार बनी रहीं। धार्मिक बहुलता के साथ–साथ हर्षवर्धन की नीति पूर्ण रूप से सहिष्णु और समन्वयकारी थीय उन्होंने किसी एक धर्म को राज्य धर्म के रूप में स्थापित नहीं किया और सभी प्रमुख परंपराओं को समान अधिकार और संरक्षण प्रदान किया, जिससे समाज में आपसी सम्मान, संवाद और वैचारिक सह–अस्तित्व की भावना प्रबल हुई।[13]

हर्षवर्धन के शासनकाल में धार्मिक गतिविधियाँ केवल आध्यात्मिक उद्देश्य तक सीमित नहीं थीं, बल्कि उन्होंने सामाजिक जीवन, शिक्षा, साहित्य, कला और सांस्कृतिक आयोजनों के माध्यम से समाज के हर वर्ग तक प्रभाव डाला। धार्मिक उत्सव, मेलों, तीर्थ यात्राओं और शास्त्रार्थों के आयोजन ने जनता में सांस्कृतिक जागरूकता बढ़ाई। मंदिरों और विहारों की स्थापत्य–शैली, मूर्तिकला और चित्रकला ने धार्मिक अनुभव को भौतिक और सौंदर्यात्मक रूप दिया। इस प्रकार हर्ष युग की धार्मिक जीवनशैली सामाजिक स्थिरता, बौद्धिक संवाद, सांस्कृतिक समन्वय और रचनात्मकता का आधार बनी, जिसने भारतीय संस्कृति में विविधता के भीतर एकता और सह–अस्तित्व की शक्ति को स्थायी रूप से सुदृढ़ किया और यह दिखाया कि हर्षवर्धन का युग गुप्तकालीन सांस्कृतिक विरासत का सशक्त निरंतरता–बिंदु था।[14]

शिक्षा व्यवस्था

शिक्षा के क्षेत्र में गुप्तोत्तर काल और हर्ष युग के बीच स्पष्ट निरंतरता दिखाई देती है, जो इस बात का प्रमाण है कि राजनीतिक अस्थिरता और साम्राज्य की सीमित केंद्रीकृत शक्ति के बावजूद बौद्धिक और शैक्षिक जीवन निरंतर विकसित होता रहा। गुप्तकाल में स्थापित नालंदा विश्वविद्यालय हर्षवर्धन के शासनकाल में भी एशिया का एक प्रमुख अंतरराष्ट्रीय शिक्षा केंद्र बना रहा, जहाँ न केवल भारत के विभिन्न भागों के विद्यार्थी, बल्कि चीन, तिब्बत, दक्षिण–पूर्व एशिया और अन्य देशों से आए छात्र अध्ययन करते थे। नालंदा में शिक्षा का स्तर अत्यंत उच्च और व्यवस्थित थाय यहाँ दर्शन, बौद्ध दर्शन, तर्कशास्त्र, व्याकरण, न्यायशास्त्र, चिकित्सा, गणित, ज्योतिष और अन्य शास्त्रों की गहन शिक्षा दी जाती थी।[15] इसके साथ ही विद्यार्थियों को अध्ययन और ध्यान के लिए अत्याधुनिक सुविधाएँ प्रदान की जाती थीं, जिसमें पुस्तकालय, अध्ययन कक्ष, छात्रावास और धर्मशास्त्र का संरक्षण शामिल था। राज्य और धार्मिक संस्थाओं के संरक्षण ने न केवल इन शिक्षा केंद्रों को सुरक्षित और समृद्ध बनाया, बल्कि विद्वानों, आचार्यों और छात्रों को अध्ययन, शोध और विचार

विमर्श के लिए प्रोत्साहित भी किया। बौद्ध मठों और विहारों ने केवल धार्मिक शिक्षा ही नहीं दी, बल्कि नैतिक शिक्षा, जीवन मूल्य और सामाजिक अनुशासन की भी शिक्षा प्रदान की, जिससे शिक्षा केवल व्यक्तिगत ज्ञान के लिए ही नहीं, बल्कि सामाजिक जीवन के समग्र विकास का भी आधार बनी। इस प्रकार नालंदा विश्वविद्यालय और अन्य शिक्षा संस्थान शैक्षिक उत्कृष्टता, बौद्धिक विकास और सांस्कृतिक चेतना के केंद्र बने।[16]

हर्ष युग में शिक्षा केवल अध्ययन तक सीमित नहीं थीय यह समाज में बौद्धिक और सांस्कृतिक संवाद का माध्यम भी थी। छात्रों और विद्वानों का बहुराष्ट्रीय प्रवेशशास्त्रीय वातावरण ने भारत को अंतरराष्ट्रीय बौद्धिक और शैक्षिक केंद्र के रूप में स्थापित किया। यहाँ की शिक्षा पद्धति, शिक्षक–विद्यार्थी परंपरा और पाठ्यक्रम की गहनता ने ज्ञान–संचय और बौद्धिक परंपरा को गुप्तकालीन प्रभाव से निरंतर जोड़े रखा। परिणामस्वरूप यह स्पष्ट होता है कि गुप्तोत्तर काल से लेकर हर्ष युग तक शिक्षा और बौद्धिक जीवन में कोई व्यवधान नहीं आया, बल्कि विद्वानों और छात्रों के सक्रिय योगदान, संस्थागत संरक्षण और राज्य की सांस्कृतिक नीतियों के कारण शिक्षा निरंतर समृद्ध और विकसित होती रही। इस प्रकार हर्षवर्धन का शासन न केवल राजनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण था, बल्कि शिक्षा, बौद्धिक विमर्श और ज्ञान–संपदा के क्षेत्र में भी उसने गुप्तकालीन विरासत को संरक्षित रखते हुए उसे और अधिक व्यापक और परिष्कृत रूप दिया, जिससे हर्ष युग भारतीय बौद्धिक इतिहास में शिक्षा और ज्ञान का एक अत्यंत महत्वपूर्ण और स्थायी केंद्र बन गया।[17]

संस्कृत भाषा और साहित्य

गुप्तोत्तर काल से लेकर हर्ष युग तक संस्कृत भाषा भारतीय साहित्य और बौद्धिक विमर्श की प्रमुख और सशक्त भाषा बनी रही, जो इस अवधि की सांस्कृतिक निरंतरता का महत्वपूर्ण प्रमाण है। इस काल में न केवल संस्कृत भाषा का प्रशासनिक और शिक्षण क्षेत्र में व्यापक प्रयोग होता रहा, बल्कि यह साहित्यिक, धार्मिक और दार्शनिक विमर्श की भाषा के रूप में भी स्थापित थी। नाट्य, काव्य और गद्य तीनों साहित्यिक विधाओं का विकास निरंतर जारी रहा, और इनके माध्यम से सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन के विविध पहलुओं का सजीव चित्र प्रस्तुत किया गया। हर्षवर्धन स्वयं संस्कृत नाटकों के रचनाकार थे, और उनके दरबार में बाणभट्ट जैसे महान साहित्यकार सक्रिय रहे, जिन्होंने हर्षचरित, कादंबरी और अन्य ग्रंथों के माध्यम से तत्कालीन सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन, राजनीतिक घटनाओं और धार्मिक परंपराओं का समग्र चित्रण किया। संस्कृत साहित्य के इस युग में नाटकों और काव्य की रचनाएँ केवल मनोरंजन या कलात्मक अभिव्यक्ति तक सीमित नहीं थींय वे नैतिक शिक्षा, सामाजिक मूल्य और बौद्धिक विमर्श का माध्यम भी बनीं।[18] साहित्यकारों और विद्वानों का दरबार में सक्रिय योगदान, पाठ्यपुस्तकों का संरक्षण और शिक्षण संस्थाओं में संस्कृत के प्रयोग ने यह सुनिश्चित किया कि गुप्तकालीन साहित्यिक परंपरा संरक्षित रहे और हर्ष युग में और अधिक परिष्कृत रूप ग्रहण करे। इसके अतिरिक्त, संस्कृत का व्यापक प्रयोग शिक्षा, धर्म और प्रशासन में भी होता रहा, जिससे यह भाषा भारतीय समाज के बौद्धिक जीवन की रीढ़ बनी। इस प्रकार संस्कृत भाषा और साहित्य ने न केवल गुप्तकालीन सांस्कृतिक परंपराओं को निरंतर बनाए रखा, बल्कि हर्ष युग में उन्हें व्यापक, व्यवस्थित और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रभावशाली रूप प्रदान किया, जिससे यह स्पष्ट होता है कि यह युग भारतीय साहित्य और बौद्धिक चेतना के विकास में एक अत्यंत महत्वपूर्ण और निर्णायक चरण था।[19]

संस्कृति में परिवर्तन के तत्त्व

हर्ष युग में संस्कृति में परिवर्तन के तत्त्व गुप्तोत्तर काल से भिन्न राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियों का परिणाम थे। गुप्तकाल की केंद्रीय सत्ता के स्थान पर सामंती प्रवृत्तियों का उदय हुआ और हर्ष का प्रशासनिक ढाँचा पहले की तुलना में अधिक विकेंद्रीकृत था, जिससे सांस्कृतिक संरक्षण के स्वरूप में स्थानीय विविधता आई। इस काल में बौद्ध धर्म, विशेषकर महायान परंपरा, को अभूतपूर्व संरक्षण प्राप्त हुआ, और कन्नौज तथा प्रयाग की धार्मिक सभाएँ इसका उदाहरण हैं। साथ ही, दान, करुणा और अहिंसा जैसे नैतिक मूल्यों पर जोर बढ़ा और बौद्ध प्रभाव के कारण सामाजिक जीवन में मानवीय दृष्टिकोण सुदृढ़ हुआ। इस प्रकार हर्ष युग में संस्कृति ने गुप्तकालीन परंपराओं को बनाए रखते हुए नए धार्मिक, सामाजिक और नैतिक स्वरूप ग्रहण किए।[20]

राजनीतिक संरचना का प्रभाव

गुप्त काल की केंद्रीय सत्ता के स्थान पर गुप्तोत्तर काल में सामंती प्रवृत्तियों का उदय हुआ, जिसके कारण राजनीतिक ढाँचे में व्यापक विकेंद्रीकरण देखने को मिला। हर्षवर्धन ने यद्यपि उत्तर भारत को एक सीमा तक एकीकृत किया और राजनीतिक स्थिरता स्थापित की, फिर भी प्रशासनिक तंत्र पहले की तुलना में अधिक लचीला और विकेंद्रीकृत था। इसके परिणामस्वरूप राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में स्थानीय शासकों और सामंतों को प्रशासनिक और सांस्कृतिक निर्णयों में स्वतंत्रता प्राप्त हुई, जिससे क्षेत्रीय सांस्कृतिक परंपराओं और स्थानीय कलाओं का संरक्षण संभव हुआ। यह विकेंद्रीकृत प्रशासनिक ढाँचा न केवल राजनीतिक प्रबंधन में सहायक था, बल्कि सांस्कृतिक जीवन में भी महत्वपूर्ण प्रभाव डालता था। स्थानीय राजाओं और शासकों ने अपने क्षेत्रों में मंदिरों, मठों, शिक्षा केंद्रों और

कला–साहित्य के संरक्षण पर विशेष ध्यान दिया, जिससे सांस्कृतिक गतिविधियाँ अधिक विविध और समृद्ध हुईं। इसके अलावा, प्रशासनिक विकेंद्रीकरण के कारण कला, स्थापत्य, साहित्य और धार्मिक परंपराओं में स्थानीय रंग और शैली विकसित होने लगी, जिससे प्रत्येक क्षेत्र की सांस्कृतिक पहचान सशक्त हुई। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि राजनीतिक संरचना में बदलाव ने हर्ष युग के सांस्कृतिक संरक्षण और विकास के स्वरूप को नई दिशा दी, और गुप्तकालीन केंद्रीय सत्ता की तुलना में सांस्कृतिक जीवन में अधिक बहुआयामी और समन्वित प्रवृत्तियों को जन्म दिया।[21]

बौद्ध धर्म का बढ़ता प्रभाव

हर्ष युग में बौद्ध धर्म, विशेषकर महायान परंपरा, ने अभूतपूर्व संरक्षण और संवर्धन प्राप्त किया, जिसने धार्मिक, सामाजिक, बौद्धिक और सांस्कृतिक जीवन में गहरा प्रभाव डाला। हर्षवर्धन ने बौद्ध विहारों, मठों और धार्मिक संस्थाओं के निर्माण और संरक्षण के माध्यम से महायान परंपरा को बढ़ावा दिया, जिससे शिक्षा, ध्यान और समाज सेवा के क्षेत्र में बौद्धिक गतिविधियाँ सक्रिय रहीं। कन्नौज सभा और प्रयाग की धार्मिक सभाएँ इस परिवर्तन का स्पष्ट उदाहरण हैं, जहाँ विभिन्न क्षेत्रों से आए विद्वान, साधु और धर्माचार्य गहन धार्मिक, दार्शनिक और सामाजिक विमर्श करते थेय इन सभाओं में न केवल उपदेश, अध्ययन और विचार–विमर्श होता था, बल्कि नैतिकता, करुणा और अहिंसा जैसे मानवीय मूल्यों को भी समाज में स्थापित करने पर बल दिया जाता था।[22] हर्ष युग में बौद्ध विहारों और मठों ने अध्ययन और ध्यान के साथ–साथ कला, साहित्य और स्थापत्य के विकास में भी योगदान दिया, जहाँ भित्तिचित्र, मूर्तिकला और स्थापत्य कला के माध्यम से महायान विचारधारा और बौद्ध सांस्कृतिक प्रतीकों का प्रसार हुआ। इन संस्थाओं में दर्शन, तर्कशास्त्र, धर्मशास्त्र, व्याकरण, चिकित्सा और गणित जैसे विषय पढ़ाए जाते थे, जिससे बौद्ध विद्वानों का ज्ञान व्यापक और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मान्य हुआ। राज्य का संरक्षण और प्रशासनिक समर्थन इन संस्थाओं को सुरक्षित, समृद्ध और सक्रिय बनाए रखने में सहायक था, जिससे बौद्ध धर्म केवल धार्मिक प्रथाओं तक सीमित न रहकर समाज के बौद्धिक, नैतिक और सांस्कृतिक जीवन का आधार बन गया। परिणामस्वरूप हर्ष युग में महायान बौद्ध धर्म ने धार्मिक सहिष्णुता, सामाजिक नैतिकता, शिक्षा, कला और साहित्य में स्थायी और बहुआयामी प्रभाव डाला, और भारतीय संस्कृति में सहिष्णुता, बहुलता और समृद्धि की दृष्टि से एक स्थायी और समन्वित सांस्कृतिक परंपरा की नींव रखी।[23]

सामाजिक चेतना

हर्ष युग में सामाजिक चेतना के क्षेत्र में गुप्तोत्तर काल से विकसित होने वाले परिवर्तन स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं, जहाँ दान, करुणा और अहिंसा जैसे नैतिक मूल्यों पर विशेष बल दिया गया और बौद्ध धर्म, विशेषकर महायान परंपरा, ने समाज में मानवीय दृष्टिकोण और नैतिकता को सुदृढ़ किया। कन्नौज और प्रयाग की धार्मिक सभाएँ केवल धार्मिक उपदेशों का मंच नहीं थीं, बल्कि समाज सुधार, नैतिक शिक्षा, सामुदायिक सहयोग और सार्वजनिक जीवन के आदर्श स्थापित करने के केंद्र थीं, जहाँ विद्वान, साधु और समाजसेवी विभिन्न सामाजिक मुद्दों, न्याय, दान और मानवीय मूल्यों पर विचार–विमर्श करते थे। इस काल में बौद्ध मठ और विहार अध्ययन, ध्यान और धार्मिक गतिविधियों के साथ–साथ गरीबों और जरूरतमंदों की सहायता, रोगियों की देखभाल, शिक्षा और सामूहिक कल्याण के कार्यों के लिए भी सक्रिय रहे, जिससे समाज में सहिष्णुता, सामुदायिक चेतना और नैतिक मूल्यों का विकास हुआ।[24] अहिंसा के सिद्धांत को व्यक्तिगत जीवन के साथ–साथ सामाजिक व्यवहार और प्रशासन में भी महत्व दिया गया, और न्यायपूर्ण शासन तथा समानता के विचार प्रोत्साहित किए गए। हर्षवर्धन के संरक्षण और बौद्ध धर्म के प्रभाव में शिक्षा, साहित्य और कला के माध्यम से भी नैतिक मूल्यों का प्रसार हुआ, जिससे समाज में मानवीय दृष्टिकोण और सामाजिक न्याय की भावना मजबूत हुई। परिणामस्वरूप, हर्ष युग में सामाजिक चेतना ने धार्मिक, नैतिक, शैक्षिक और सांस्कृतिक जीवन के सभी क्षेत्रों में स्थायी और बहुआयामी प्रभाव छोड़ा, और भारतीय संस्कृति में गुप्तकालीन परंपराओं के निरंतर प्रवाह के साथ नए आदर्शों और मूल्यबोध की स्थायी नींव स्थापित की।[25]

गुप्तोत्तर और हर्ष युग की संस्कृतिः एक तुलनात्मक दृष्टि

गुप्तोत्तर और हर्ष युग की संस्कृति को तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर यह स्पष्ट होता है कि गुप्तोत्तर काल सांस्कृतिक संक्रमण और परिवर्तन का युग था, जिसमें राजनीतिक अस्थिरता और सामंती प्रवृत्तियों के बावजूद धार्मिक, बौद्धिक, सामाजिक और साहित्यिक परंपराओं की नींव पड़ी। इस काल में ब्राह्मण धर्म, बौद्ध धर्म और जैन धर्म समानांतर रूप से सक्रिय रहे और उन्होंने मंदिर, मठ और विहारों के माध्यम से शिक्षा, नैतिकता और आध्यात्मिक चेतना को समाज में बनाए रखा। नालंदा और अन्य शिक्षा केंद्र विकसित हुए, जहाँ दर्शन, तर्कशास्त्र, धर्मशास्त्र, व्याकरण, चिकित्सा और गणित जैसे विषय पढ़ाए जाते थे। संस्कृत भाषा और साहित्य ने प्रशासन, शिक्षा और बौद्धिक विमर्श में प्रमुख भूमिका निभाई, और नाट्य, काव्य और गद्य तीनों विधाओं का विकास निरंतर जारी रहा। सामाजिक चेतना में भी परिवर्तन की प्रारंभिक झलकें दिखाई दीं, जिसमें दान, करुणा, अहिंसा और मानवीय दृष्टिकोण को महत्व दिया गया। हर्ष

युग ने गुप्तोत्तर काल में विकसित इन सांस्कृतिक बीजों को पूर्ण परिपक्वता और व्यापकता प्रदान की।[26] हर्षवर्धन के शासन में शिक्षा और बौद्धिक विमर्श को अभूतपूर्व संरक्षण प्राप्त हुआय नालंदा विश्वविद्यालय और अन्य विहार अंतरराष्ट्रीय शिक्षा केंद्र बन गए, जहाँ भारत के विभिन्न भागों के साथ–साथ चीन, तिब्बत और दक्षिण–पूर्व एशिया से विद्यार्थी अध्ययन के लिए आते थे। बौद्ध धर्म, विशेषकर महायान परंपरा, को संरक्षण प्राप्त हुआ, और कन्नौज तथा प्रयाग की धार्मिक सभाएँ इस बदलाव का स्पष्ट उदाहरण हैं। हर्षवर्धन का प्रशासन विकेंद्रीकृत था, जिससे स्थानीय शासकों और समुदायों को सांस्कृतिक और धार्मिक गतिविधियों में स्वतंत्रता मिली, और इस प्रकार विभिन्न क्षेत्रों में स्थानीय कला, स्थापत्य और सांस्कृतिक पहचान विकसित हुई। साहित्यिक क्षेत्र में भी गुप्तकालीन संस्कृत परंपराएँ न केवल संरक्षित रहीं, बल्कि हर्ष के दरबार में बाणभट्ट जैसे महान साहित्यकार सक्रिय रहे, जिन्होंने हर्षचरित, कादंबरी और अन्य कृ तियों के माध्यम से तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक जीवन का जीवंत चित्र प्रस्तुत किया। कला और स्थापत्य के क्षेत्र में भी परिवर्तन और नवाचार देखने को मिलेय भित्तिचित्र, मूर्तिकला और मठों के निर्माण में महायान बौद्ध प्रभाव स्पष्ट था।[27]

सामाजिक जीवन में भी हर्ष युग ने गुप्तोत्तर काल की परंपराओं को और व्यापक और मानवीय रूप दिया। दान, करुणा, अहिंसा, न्याय और नैतिकता पर बल दिया गया, और धार्मिक तथा सामाजिक संस्थाओं के माध्यम से समाज में सहिष्णुता और समरसता का वातावरण विकसित हुआ। बौद्ध मठ और विहार शिक्षा, धर्म, सामाजिक सेवा और कला के केंद्र बने, जिससे समाज में मानवीय मूल्यों, बौद्धिक चेतना और सांस्कृतिक समृद्धि का संतुलित विकास हुआ।[28] इस प्रकार हर्ष युग गुप्तकालीन सांस्कृतिक परंपराओं की निरंतरता को बनाए रखते हुए, प्रशासनिक, धार्मिक, सामाजिक और बौद्धिक क्षेत्रों में नवाचार और विविधता का समन्वित रूप प्रस्तुत करता है। गुप्तोत्तर काल के बीजों पर आधारित यह युग केवल संस्कृति के संरक्षण का प्रतीक नहीं रहा, बल्कि बहुलता, सहिष्णुता, नवाचार और समृद्धि के माध्यम से भारतीय संस्कृति में स्थायित्व, समग्र विकास और बहुआयामी दृष्टि की स्पष्ट अभिव्यक्ति प्रस्तुत करता है, जिससे हर्ष युग भारतीय सांस्कृतिक इतिहास में एक अत्यंत महत्वपूर्ण और निर्णायक चरण बन गया।[29]

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि गुप्तोत्तर काल और हर्ष युग की संस्कृति को केवल पतन और उत्थान के दृष्टिकोण से नहीं समझा जा सकताय यह एक सतत, जीवंत और बहुआयामी सांस्कृतिक प्रक्रिया थी, जिसमें परंपरा और परिवर्तन का संतुलित समन्वय स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। गुप्तकालीन धार्मिक, साहित्यिक, शैक्षिक और सामाजिक परंपराएँ हर्ष युग में केवल संरक्षित नहीं रहीं, बल्कि नए राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक संदर्भों में उन्हें नवीन रूप और व्यापक प्रभाव प्राप्त हुआ। हर्षवर्धन के शासनकाल में शिक्षा, कला, साहित्य, धर्म और सामाजिक चेतना के क्षेत्र में संरक्षण और नवाचार दोनों का संतुलित मिश्रण देखने को मिलता है, जिसने भारतीय संस्कृति में सहिष्णुता, बहुलता और बौद्धिक उदारता के आदर्श स्थापित किए। बौद्ध धर्म के महायान संप्रदाय को प्राप्त संरक्षण, संस्कृत साहित्य और नाट्य कला का विकास, मठों और विहारों में शिक्षा और सामाजिक सेवा का प्रसार तथा सामाजिक नैतिकता और मानवीय मूल्यों का सुदृढ़ीकरण इन सभी तत्वों ने हर्ष युग को गुप्तकालीन सांस्कृतिक विरासत का केवल संवाहक ही नहीं, बल्कि उसे पुनर्परिभाषित करने वाला युग भी बना दिया। इस दृष्टि से, हर्ष युग भारतीय सांस्कृतिक इतिहास में एक ऐसा निर्णायक चरण है, जहाँ बहुलता, सहिष्णुता, बौद्धिक और सामाजिक उदारता का संतुलित समन्वय प्रतीत होता है, और यह स्पष्ट करता है कि संस्कृति केवल संरक्षण नहीं बल्कि निरंतर विकास और समृद्धि का जीवंत माध्यम है।

संदर्भ ग्रंथः

1. शर्मा, आर.एस., *इंडियाज एंसियंट पास्ट,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2003, पृ. 212–213.
2. मजूमदार, आर.सी., *रायचौधुरी, एच.सी. और दत्ता, के., एडवांस्ड हिस्ट्री ऑफ इंडिया,* मैकमिलन, लंदन, 1950, पृ. 318–319.
3. कोसाम्बी, डी.डी., *अन इंट्रोडक्शन टू द स्टडी ऑफ इंडियन हिस्ट्री,* पॉपुलर प्रकाशन, मुंबई, 1956, पृ. 163.
4. मजूमदार, आर.सी. और अल्टेकर, *पूर्वोक्त,* पृ. 53.
5. मुखर्जी, आर.के., *द गुप्ता एम्पायर,* मोतीलाल बनारसिदास, दिल्ली, 1997, पृ. 101द102.
6. अग्रवाल, ए.एस., *राइज एंड फॉल ऑफ द इम्पीरियल गुप्टास,* मुंशीराम मनोहरलाल, नई दिल्ली, 1988, पृ. 134.
7. बनर्जी, आर.डी. और चक्रवर्ती, *डी.के., द एज ऑफ द इम्पीरियल गुप्तास,* बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी, वाराणसी, 1933, पृ. 18.
8. शर्मा, आर.एस. (संपादक), *पर्सपेक्टिव्स इन सोशल एंड इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ अर्ली इंडिया,* मुंशीराम मनोहरलाल, नई दिल्ली, 2003, पृ. 49.
9. शर्मा, आर.एस., *मटेरियल कल्चर एंड सोशल फॉर्मेशन्स इन एंसियंट इंडिया,* मैकमिलन, दिल्ली, 1983, पृ. 1056.

10. रायचौधुरी, एच.सी. और मुखर्जी, बी.एन., *पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एंसियंट इंडिया,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, कोलकाता, 1996, पृ. 236—237.
11. सिंह, उपिंदर, *अ हिस्ट्री ऑफ एंसियंट एंड अर्ली मीडियवल इंडिया,* पियर्सन, नई दिल्ली, 2009, पृ. 414.
12. शर्मा, आर.एस., *इंडियन फ्यूडलिज़्म,* मैकमिलन पब्लिशर्स इंडिया लिमिटेड, दिल्ली, 2005, पृ. 80—81.
13. वही, पृ. 288.
14. वही, पृ. 330.
15. सरकार, डी.सी., *इंडियन एपिग्राफी,* मोतीलाल बनारसिदास, दिल्ली, 2017, पृ. 158—159.
16. गोयल, एस.आर., *अ हिस्ट्री ऑफ द इम्पीरियल गुप्तास,* सेंट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, 1967, पृ. 48.
17. बीअल, एस., *सी यू की और बौद्ध रिकॉर्ड्स ऑफ द वेस्टर्न वर्ल्ड,* मोतीलाल बनारसिदास, दिल्ली, 1969, पृ. 26.
18. शर्मा, बी.एन., *हर्ष एंड हिज टाइम्स,* विश्वविद्यायलाय प्रकाशन, वाराणसी, 1970, पृ. 108—109.
19. मुखर्जी, आर.के., *पूर्वोक्त,* पृ. 255.
20. बाणभट्ट, हर्षचरित (अनुवादः ई. बी. कॉवेल), *एशियाटिक सोसाइटी,* कोलकाता, 1896, पृ. 17—18.
21. हुयेन त्सांग, *सी यू कीः बौद्ध रिकॉर्ड्स ऑफ द वेस्टर्न वर्ल्ड* (अनुवादः सैमुअल बीअल), मोतीलाल बनारसिदास, दिल्ली, 1969, पृ. 94.
22. शर्मा, आर.एस., पूर्वोक्त, पृ. 281—282.
23. मजूमदार, आर.सी., *द हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ द इंडियन पीपल, वॉल्यूम—3 द क्लासिकल एज,* भारतीय विद्या भवन, मुंबई, 1960, पृ. 223.
24. सिंह, उपिंदर, *द आइडिया ऑफ एंसियंट इंडियाः एसेज ऑन रिलीजन पोलिटिक्स एंड आर्कियोलॉजी,* सेज इंडिया, नई दिल्ली, 2015, पृ. 131—132.
25. कोसाम्बी, डी.डी., *अन इंट्रोडक्शन टू द स्टडी ऑफ इंडियन हिस्ट्री (2012 रीप्रिंट),* पॉपुलर प्रकाशन, मुंबई, पृ. 194.
26. अलबियन, रॉबर्ट ग्रीन, *सोसाइटी इन इंडिया, वॉल्यूम 2,* मैकमिलन, न्यू यॉर्क, 1928, पृ. 336.
27. चक्रवर्ती, डी.के., *ओरिजिन एंड डेवलपमेंट ऑफ एंसियंट इंडियन सिटीज,* मुंशीराम मनोहरलाल, दिल्ली, 1990, पृ. 81.
28. प्रसाद, बी.एस., *जैनिज़्म एंड बौद्धिज़्मः ए कम्पेरेटिव स्टडी,* श्री जी, वाराणसी, 2011, पृ. 51.
29. मजूमदार, आर.सी. और पुसालकर, ए.डी. (संपादक), *हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ द इंडियन पीपल,* भारतीय विद्या भवन, मुंबई, 1952, पृ. 304—305.